

सिनेमा में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतिध्वनि

डॉ. निलांजना त्रिपाठी*

भारतीय सिने इतिहास में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतिध्वनि के संबंध में कुछ कहना जितना ही गंभीर है, उतना ही जटिल भी। यह सत्य है कि सिनेमा का उदय जिस प्रबल आकांक्षा और बेचौनी का परिणाम था उसमें राष्ट्रीय चेतना की लहर और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रखर स्वर भी समाहित था लेकिन अनंत संभावनाओं के बावजूद कला के नाम पर उसे अगंभीर और अनावश्यक कहा गया। फलतः इसकी स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद निर्माता-निर्देशक और अन्य कलाकार सहयोगी बंधु सबको इस यश से वंचित होना पड़ा। प्रारंभ में सिनेमा चूंकि आधुनिक कला माध्यम था जिसके सम्यक् विकास के लिए पूर्ण रूप से जिन वैज्ञानिक साधनों और विवेक की जरूरत थी उसका बहुत अभाव था और ऐसे में देश की राष्ट्रीय ज्वलंत समस्याओं को भी साथ लेकर चलना था। कहना न होगा कि 1931 से पूर्व सिनेमा का युग मूक-युग के नाम से जाना जाता है। यह केवल चित्र था जिसमें आवाज नहीं थी और उसी से हम अपना भरपूर मनोरंजन कर लेते थे। मूक युग की फिल्मों को देखकर हमारे भी भीतर राष्ट्रीय-सामाजिक-सांस्कृतिक प्रेरणाएँ जगती थीं जिनको नजरअंदाज करके आगे नहीं बढ़ सकते थे। मूक सिनेमा ने हमारे समय को चित्रित कर उससे हमारा संबंध जोड़ा और बताया कि सिनेमा मनोरंजन का उत्तम माध्यम है लेकिन यह ज्ञानवर्धन के लिए भी अत्यंत बेहतरीन माध्यम है।

सात जुलाई 1896 को मुंबई के वाटसन होटल में लुमियर बंधुओं ने फिल्म दिखायी तो भारत में पहली बार इस नई कला विधा की जानकारी पर्दे के माध्यम से प्राप्त हुई। हमने समझा कि चित्र भी बहुत कुछ हमारी जिन्दगी में परिवर्तन की बातें लाता है। 3 मई 1913 को फाल्के साहब ने एक स्वदेशी फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' जिसे वास्तविक फिल्म के नाम से जाना गया, बनायी। तीसरी महत्वपूर्ण तिथि 14 मार्च 1931 है जब मुंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' रिलीज हुई थी। पहली बोलती फिल्म बनाने में और लोग भी लगे हुए थे लेकिन इसका श्रेय आर्देशिर ईरानी को ही जाता है क्योंकि उन्होंने

इंपीरियल फिल्म कंपनी के तहत पहली वास्तविक फिल्म बनायी जिससे बहुत पीछे रह गए मदन थियेटर्स वाले फिल्मकार। यह फिल्म पारसी रंगमंच की शैली का मनोरंजन करती थी।

भारतीय सिनेमा का जनक माना जाता है फाल्के को क्योंकि उन्होंने ही पहले-पहल इस विधा की शुरुआत की जिसको नवजीवन देने का काम ईरानी ने किया था। इसीलिए फाल्के को जो सम्मान मिला वह ईरानी को कहीं मिल सका। उस समय समाज में सिनेमा के प्रति सम्मान का भाव नहीं था। लोग नहीं समझते थे कि इस कला के माध्यम से भी हम जन-जागरण अभियान चला सकते हैं, फिल्में देखकर हम अपने भीतर गहरी संवेदना पैदा कर सकते हैं, जनता की पीड़ा और व्यथा की कहानी को चित्रित करके हम उसका निदान भी तलाश सकते हैं। देश गुलाम था, भाषा के नाम पर अंग्रेजी का वर्चस्व था, ऐसे में इस रचनात्मक विधा के प्रति बुद्धिजीवियों का व्यवहार अनुकूल न होना हास्यास्पद और विस्मयकारी दोनों है। यह कला नवीन कला थी, नवीन सोच था और जनता यहाँ की उतनी पढ़ी-लिखी न थी कि इस बात को समझे और जाने कि इसका जीवन में क्या महत्व है। जनता समझती थी कि यह सिर्फ नाच-गाने-तमाशे का एक माध्यम है। भारत में रंगमंच बहुत पहले से था। भारत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' की रचना की थी। नाटक था भी और इसके माध्यम से समकालीन बातों को भी रेखांकित किया जाता था लेकिन सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में किसी को यह नया माध्यम समझ में नहीं आ रहा था।

"सिनेमा ने अपने जादुई आकर्षण से ऐसा जबर्दस्त प्रभाव छोड़ा कि इसके दर्शकों, प्रशंसकों की संख्या निरंतर बढ़ती गई और समूचे विश्व में इसकी धूम मच गई। इसने अपनी चमत्कारिक शक्ति से सभी भाषायी तथा भौगोलिक सीमाओं को आसानी से पार कर लिया। मानव पर इसका प्रभाव अत्यंत गहरा और सर्वव्यापी था। इसके पूर्व मूलतः मनोरंजन के उद्देश्य से बने किसी भी अन्य माध्यम से इतने बड़े पैमाने पर सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन होते नहीं देखे गए। समय के साथ-साथ सिनेमा एक बड़े उद्योग के रूप में उभरकर सामने आया और आज भी यह विश्वभर में लाखों लोगों की जीविका का साधन है।"

"भारतीय सिनेमा का एक महत्वपूर्ण सकारात्मक पहलू है— इसका राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में योगदान। भारतीय फिल्में भले ही अप्रत्यक्ष रूप से किन्तु निरंतर राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिक सद्भाव के आदर्शों को प्रस्तुत कर इन्हें बढ़ाने में अपना योगदान कर रही हैं।" सिनेमा ही वह कलात्मक विधा है जिससे अवाम के दिलों तक पहुँचकर हम उसकी यातना, विडंबना, विसंगति, बेचौनी, चूर-चूर होते सपने, अधिकारियों से तबाह आदि चिन्ता की बातें कर सकते हैं। सबसे बड़ी कामयाबी उसी सिनेमा को मिलती है जो जमीन और जिन्दगी पर

* (सहायक प्राध्यापक) जी डी के उ वि सह इंटर कॉलेज, रसीदचक, सीवान

विचार करता है और स्वस्थ मानसिकता के निर्माण में बिना किसी हैरानी और परेशानी के अपनी भूमिका निभाने को सबसे बड़ा लक्ष्य समझता है। जब भी सिनेमा और राष्ट्रीय आंदोलन से उसके अंतर्संबंध की बात सामने आती है तो हम दुविधा में पड़ जाते हैं। जिस दशक में सवाक् सिनेमा का उदय हुआ यह भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का ज्वलंत समय था। देश में चारों तरफ एक खास तरीके से सत्य और अहिंसा के बल पर आजादी की लड़ाई चल रही थी। गरमदल और नरमदल के नाम पर दो दल थे। 1905 में बंगाल का विभाजन हुआ। "1914 में प्रथम युद्ध शुरू हुआ इसका भी यहाँ असर पड़ना स्वाभाविक था। 13 अप्रैल 1919 को जालियाँवाला बाग हत्याकांड हो चुका था। जालियाँवाला बाग कांड से पूरा देश स्तब्ध रह गया। वहशी क्रूरता ने देश को मौन कर दिया। वह मौन टूटा, मगर कुछ समय बाद सरकार ने इस कांड के बाद भी दमन का रवैया बरकरार रखा पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। विशेषकर अमृतसर की जनता पर अनेक तरह के अत्याचार किये गए। लोगों को पेट के बल रेंगने पर मजबूर किया गया।

इसी तरह 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ जिसकी रपतार दिन-प्रतिदिन तेज होती चली गयी। 12 फरवरी 1922 का असहयोग आंदोलन गाँधीजी ने वापस ले लिया। बिपिनचन्द्र कहते हैं कि "गाँधीजी शायद सोचते थे कि इस समय देशव्यापी आंदोलन छेड़ने से हिंसा भड़क उठने का खतरा है। जैसा कि 1921 में बंबई में और बाद में चौरीचौरा में हुआ था। गाँधीजी को आशंका थी कि इस तरह की कारवाइयों से अहिंसक असहयोग आंदोलन की समूची रणनीति विफल हो जाएगी। अहिंसक आंदोलन की रणनीति यह थी कि दमनकारी सत्ता यदि इस आंदोलन के खिलाफ दमनात्मक कारवाई करेगी तो उसका चरित्र बेनकाब हो जाएगा।

सिनेमा जगत यह देख रहा था कि 'जब भारत के सामने, अंग्रेजों को हटाकर अपनी स्वतंत्र सरकार कायम करने का स्वप्न प्रकट हुआ, तब मुस्लिम नवोत्थान से क्षरित शक्तियाँ दो धाराओं में विभक्त हो गयीं। एक धारा थी जो आँख बन्द करके अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल देने को तैयार थी तो दूसरी धारा सोच रही थी कि इनके जाने के बाद हमारा क्या होगा। निहित स्वार्थवाले पूंजीपतियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में बहुत ही कम भाग लिया, किन्तु कुछ धनी थे जो हिन्दू सभा के साथ थे। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि इस राष्ट्रीयतावादी धारा में हिन्दू अधिक और मुसलमान कम आये और लोगों में व्याप्त इसी डर, शंका, दुविधा के परिणामस्वरूप भारत का विभाजन हुआ। हम आजादी से पूर्व के सिनेमा की ओर लौटते हैं और समझने की कोशिश करते हैं तो वास्तव में सिनेमा निर्माता संवादों की विशेषता पर बहुत ध्यान रखते थे ताकि उनको सुनकर दर्शक का

मस्तिष्क परिवर्तन हो और एक से दूसरा जुड़ने की कोशिश में कामयाब हो। यहाँ तक कि पात्रों का चयन भी उसी तरह से किया जाता था कि आपसी मतभेद की गुंजाइश वहाँ न रहे।

इसी तरह फिल्म 'चंडीदास' में एक ब्राह्मण जब चमार बनता है और पूरे मनोयोग से बनता है तो हमारे जैसे अन्य लोग कहेंगे कि यह इस फिल्म की कमजोरी है। लेकिन सत्य यह है कि फिल्म बताना चाहती है कि हृदय के भाव से बड़ी जाति या धर्म नहीं है। विवेकानंद अपने यहाँ हुए हैं जिन्होंने इस तरह की संकीर्णता पर बहुत कुछ बहुत पहले कहा था जब यह फिल्म बनी भी नहीं थी। इसमें निर्माता एक नई खोज करता है। कला के माध्यम से वह इतिहास को खंगालने का काम करता है, फिर अभिनय के द्वारा अपना उद्देश्य स्पष्ट तौर पर तो नहीं लेकिन सांकेतिक रूप में जरूर बताना चाहता है।

उस समय देश में अछूत का सवाल भी जोरों पर था। गाँधीजी इस व्यवस्था को समाप्त कर एक नया समाज बनाने को प्रयत्नशील थे। "1917 तक कांग्रेस समाज-सुधार से संबंध मुद्दों को उठाने से इन्कार करती आयी थी। इससे भारतीय जनता में पनपती राजनीतिक एकता पर गलत असर पड़ा। लेकिन 1917 में एक प्रस्ताव पास कर जनता से अपील की गयी कि वह ऐसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करे जिनके कारण पिछड़े वर्गों को हेय दृष्टि से देखा जाता है, उनके साथ अन्याय किया जाता है। कांग्रेस ने बाद के सालों में इनके उत्थान के लिए अति महत्वपूर्ण कदम उठाया।

स्वाधीन भारत के संविधान में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव दिखायी पड़ा, जातीय असमानता को नकारा गया, छुआछूत को अपराध घोषित किया गया और सभी नागरिकों को समान अवसर देने का वादा किया गया। लेकिन इस आंदोलन की कमजोरियाँ आजाद हिन्दुस्तान में स्पष्ट दिखाई दीं। जातिवाद की जड़ें मजबूत होती चली गयीं और पिछड़े वर्गों पर अत्याचार और उनके प्रति भेदभाव बरकरार रहा।

सन् 1938 में बनी 'जीवन नैया' फिल्म अभिनेता अशोक कुमार की पहली फिल्म के रूप में याद की जाती है। इस फिल्म से ही देविका रानी और अशोक कुमार की जोड़ी मशहूर हुई। भारतीय दर्शकों के सम्मुख घटनाओं के अनंत निरंतरता वाली फिल्में प्रस्तुत करने की परंपरा का श्री गणेश यही से माना जाता है और साथ ही यह भी एक बात इसमें पहली बार आई कि तत्कालीन समाज की व्यवस्था कैसे और किस तरह विकृति की तरफ जा रही है। देश की राष्ट्रीय संघर्ष से जुड़ी भावनाओं को उभारने वाली फिल्म मानी गई। इसी तरह देविका रानी तथा अशोक कुमार द्वारा अभिनीत, निरजन पाल द्वारा लिखित और फ्रांस आस्टिन द्वारा निर्देशित अगली फिल्म 'अछूत कन्या' से ही ग्रामीण कन्या की लहंगा चोली और

सजी-धजी पोशाक का भी प्रचलन प्रारंभ हुआ था। इस फिल्म को हरिजन उद्धार की फिल्म माना जाता है। एक हरिजन यदि ब्राह्मण से उसकी मर्जी से प्यार करता है तो साधारण तौर पर जनता जो जाति के खेमे में बँटी हुई है, नहीं स्वीकार करती। उस समय की जो स्थिति थी समाज में उसको चित्रित करने में यह फिल्म सफल रही। भले ही भारतीय जन सामान्य को मनोरंजन की दृष्टि से प्रभावित करने में असफल रही हो। “छुआछूत हिन्दू समाज की इतनी पुरानी बीमारी थी और उसकी जड़े इतनी गहरी थीं कि जनता की सदृच्छा चाहे जितनी ही ईमानदारी भरी हो, मात्र उसके उद्गार से और जेल में गाँधीजी को उपलब्ध सीमित साधनों से उनका उन्मूलन संभव नहीं था। लेकिन गांधीजी बेचौन थे जैसा कि कोई नया और पवित्र लगनेवाला ध्येय उठाते वक्त वे अकसर हो जाया करते थे। दूसरी ओर सरकार उन्हें एक सीमा से अधिक असीमित सुविधाएँ देने को तैयार नहीं थी क्योंकि वे बहरहाल एक कैदी थे और एक मुक्त व्यक्ति की अपेक्षा एक कैदी के रूप में अधिक दुर्जेय बन सकते थे।

इस फिल्म को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि निर्माता की नजर तत्कालीन समाज की व्यवस्था पर जरूर रहती थी। केवल वायवीय और काल्पनिक कथा के निर्माता-निर्देशक वो बिल्कुल नहीं थे। फिल्मों पर समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति से संबंधित मूल्यों उत्थान और पतन दोनों का गहरा प्रभाव पड़ता है। फिल्म को विषय चाहिए वह विषय कैसा हो यह प्रश्न बाद में उभरता है लेकिन उसको एक विषय तो चाहिए ही। प्रभाव पड़ता है, सही है लेकिन इसके साथ-साथ फिल्म का नैतिक दायित्व यह भी है कि वह वर्तमान समाज को नये तरीके से जोड़ने की भी कोशिश करे। वह सामाजिक सांस्कृतिक विद्रूपताओं को केवल अभिव्यक्त न करें बल्कि उनको दिखाते हुए पतन की ओर ले जानेवाली चिन्तनीय समस्याओं का समाधान भी दिखाये। जो फिल्म इस तरह से अपनी भूमिका निभाने में भी सफल हो जाती है वह सामाजिक प्रतिबद्धता की भूमिका निभाने में सफल होती है और समाज में उसका स्थान भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

उस समय की फिल्मों को जब हम इस दृष्टि से देखने की कोशिश करें तो पता चलता है कि उस काल के निर्माताओं पर भी गांधीजी की अहिंसावादी राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव था। निर्माता इस बात का पूरा ख्याल रखते थे कि मानव के भीतर मानवता की भावना रहे, उसके भीतर पशुता का साम्राज्य न हो। यथार्थ वहाँ भी था लेकिन आजकल वाला यथार्थ नहीं था आज कल अनास्था पैदा होती है और अनास्था किसी सामूहिक संघर्ष के बजाय व्यक्तिगत विद्रोह को जन्म देती है विजय और पराजय का खेल चलता है। नतीजतन खून के लाल-लाल बे-आकार धब्बों से रंगी ये फिल्में अंत में व्यक्ति की चेतना को विचित्र तरह के खारे

अहसास से भर देती है। अरस्तू ने रंगशाला की तुलना एक ऐसे अस्पताल से की थी जहाँ व्यक्ति के मनोविकारों का इलाज होता है। ब्रेख्त ने कहा था कि दर्शक की चेतना भावना के सागर में डूबनी नहीं चाहिए।

राष्ट्रीय आंदोलन जिस समय चल रहा था उस समय समाज में सिनेमा से ज्यादा रंगमंच का प्रचलन था। फिर भी सिनेमा के प्रति दर्शक मुग्ध हो रहे थे जो धीरे-धीरे विकसित होता चला गया। “सिनेमा जीवन पर निर्भर है, बहुत ध्यान से उसकी सुनता है। शैली (जेनरे) से उसे नियंत्रित करना चाहता है या शैलीगत साचों की सहायता से भावना को उभारना चाहता है। यह रंगमंच की तरह नहीं जो विचारों के तहत क्रियाशील रहता है कि जिसमें कोई वैयक्तिक पात्र भी विचार की तरह ही होता है। “निःसंदेह सारी कलाएँ कृत्रिम हैं। वे केवल सत्य को साकेतिक रूप से प्रस्तुत करती हैं। यह बिल्कुल साफ है। शिल्प में खामी हो और व्यवसाय में सूक्ष्मदर्शिता का अभाव हो तो जिस तरह की कृत्रिमता जन्म लेगी। उसे स्टाइल कहकर टाला नहीं जा सकता। उसको इस स्टाइल के नाम पर दुर्गति का शिकार कहीं न कहीं होना पड़ता है जो आजकल की कला की फिल्मों में देखा जा रहा है। हमें ध्यान देना चाहिए कि एक स्वाभाविक प्रक्रिया और चिंतनधारा के अंतर्गत ही सिनेमा का सच्चा सरोकार राष्ट्रीय आंदोलन से हो सकता था, केवल शैली आवश्यक नहीं थी।

लगान में बहुत खूबसूरती से क्रिकेट के लोकप्रिय तत्व का उपयोग किया गया। इसे गिल्ली-डंडे से जोड़कर निर्देशक ने अपने समाज की बारीक पहचान का परिचय दिया। समाज में सहयोगी अंतःसंबंध किस प्रकार बनते हैं और कैसे उनका उपयोग किया जा सकता है इसकी प्रेरणा ‘लगान’ देती है। क्रिकेट टीम के गठन में सबसे पहले उन्हीं लोगों का सहयोग मिलता है जो समाज में अपना कोई विशेष महत्व नहीं रखते। वास्तव में लगान जहाँ व्यक्ति के अथक संघर्ष और दुर्दम्य जिद से विजय प्राप्ति की शौर्यगाथा कहती है, वही स्वदेश अपनी अगाध आकांक्षाओं पर नियंत्रण कर सामाजिक संरचना में बदलाव के लिए निमज्जित हो जाने की प्रेरणा कथा है। लगान एक फंतासी कथा है और स्वदेश में वर्तमान का यथार्थ है। लगान में संघर्ष प्रत्यक्ष है, स्वदेश में आंतरिक है यह सोच का संघर्ष है। यह जीवन की दिशा निर्धारित करने का संघर्ष है। सामर्थ्यवान प्रतिभा की फिल्म है। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि इस तरह का काम करने के लिए प्रतिभा भी चाहिए, लगन और निष्ठा भी और इसके साथ-साथ देश और समाज की गहरी जानकारी भी। यह ठीक है कि आज देश गुलाम नहीं है लेकिन भीतरी समस्याएँ जैसे पराधीनता के समय थीं, आज भी हैं। सच पूछा जाए तो आज भी हम भीतर से अपने को गुलाम और कुंठाग्रस्त मानते हैं और हैं भी जिसको आज

कल की बहुत सी फिल्मों के साथ दिखाती है इसलिए आज भी अच्छे फिल्मकार अपनी राष्ट्रीय सामाजिक चेतना से अलग होकर काम-करना पसंद नहीं करते और जो इससे हटकर केवल सेक्स और ग्लैमर पर जोर देते हैं उनकी बहुत बजट की फिल्मों की चर्चा भी अधिक दिनों तक नहीं होती है। लोग उसे भूल जाते हैं ।

.....

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ-710
2. हिन्दी सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा, पृष्ठ-204
3. संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-717
4. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ-175
5. हिन्दी सिनेमा का इतिहास, पृष्ठ-211
6. गाँधी एक जीवनी, पृष्ठ -138
7. हरिजन, पृष्ठ-17
8. सिनेमा और साहित्य, विजय अग्रवाल, पृष्ठ-5

मगध प्रमण्डल पर्यटन उद्योग में संभावनाएँ

मुकेश कुमार*

प्रो० (डॉ०) शिव शंकर गुप्ता**

सार:—पर्यटन उद्योग का मुख्य तात्पर्य किसी भी पर्यटन स्थान पर आए पर्यटकों को सुविधा प्रदान कर उनसे आय प्राप्त करना है। भारतीय पर्यटन उद्योग मुख्यतः तीन प्रकार के पर्यटन स्थल स्थल पर निर्भर है: धार्मिक, प्राकृतिक, एवं ऐतिहासिक, मेरे विषय बिहार पर्यटन उद्योग की वर्तमान स्थिति: मगध प्रमण्डल के संदर्भ में अध् ययन हेतु किया गया। इस संदर्भ में बिहार स्टेट टूरिज्म डेवलपमेंट कॉरपोरेशन द्वारा आंकड़ों को एकत्रित कर वर्तमान पर्यटन उद्योग विकास की सूचीबद्ध अध्ययन प्राप्त कर विश्लेषण किया गया।

कुंजिका : पर्यटन उद्योग, मगध प्रमंडल, पर्यटक, आय एवं बिहार।

परिचय: पर्यटन का अर्थ विशिष्ट प्रकार के खेल एवं मनोरंजन के रूप में है। पर्यटन एक मानवीय क्रियाकलाप है, जिसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक, राजीतिक, सांस्कृतिक, अथवा शैक्षिक दृष्टिकोण से भी आकलन किया जा सकता है। पर्यटन द्वारा किसी भी देश में जहाँ अच्छी जलवायु, खनिज, बालू तथा विदेशी संस्कृति इत्यादि नहीं रहने पर भी इसके लाभ उन स्थानों के लिए विकास; हेतु: मुद्रा कमाने के लिए किया जाता रहा है। विश्व के विदेशी व्यापार में पर्यटन का एक बड़ा महत्व है। यह भुगतान शेष में एक मूल तत्व है, जिसके कारण इस उद्योग में तीव्र गति से विकास होता चला आ रहा है। पर्यटन उद्योग संपत्ति तथा रोजगार उत्पन्न करने का भी एक व्यापक साधन है। जिसके द्वारा न केवल उद्योगों में सफलता मिलती है, अपितु रोजगार का भी अवसर प्राप्त होता है।

बिहार के पर्यटन उद्योग के संबंध में एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रखता है। बिहार में कई ऐसे ऐतिहासिक धरोहर हैं, जिनका संबंध ना केवल मानवता हेतु बल्कि पौराणिक सभ्यता का विकास भी इस क्षेत्र में देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ नालंदा का खण्डहर है, जोकि बौद्ध पर्यटक है यहाँ प्रतिवर्ष बौद्धपर्यटक आते हैं तथा धर्म इतिहास एवं इससे जुड़े तथ्यों का अध्ययन करते हैं। इसके अतिरिक्त पर्यटक बिहार को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ज्ञान के रूप में अर्जित करते हैं।

जहाँ तक मगध प्रमंडल का विषय है, पर्यटन उद्योग में यह क्षेत्र अपनी अलग योग्यता रखता है। यहाँ की जलवायु, आस्था, भगवान् विष्णु तथा बौद्ध के

*शोधार्थी (एम०कॉम०)

**संकाय एवं वाणिज्य विभाग मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार

